INDIAN STREAMS RESEARCH JOURNAL
ISSN NO : 2230-7850
IMPACT FACTOR : 5.1651 (UIF)
VOLUME - 12 | ISSUE - 11 | DECEMBER - 2022

बघेलखण्ड की सांस्कृतिक विरासत की वर्तमान स्थिति का ऐतिहासिक अध्ययन

देवेन्द्र कुमार सोनी
शोधार्थी इतिहास, मध्यांचल प्रोफेशनल विश्वविद्यालय, भोपाल (म.प्र.)

सारांश –

शिल्पशास्त्रों एवं अन्य साहित्यिक ग्रन्थों में दुर्गों का व्यापक वर्गीकरण मिलता है। बघेलखण्ड के स्थपतियों ने यहाँ तीनों प्रकार के दृर्गों का निवेश किया है। आकार एवं प्रकार की दृष्टि से बघेलखण्ड के दुर्गों को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है–बड़े, मध्यम और लघु दुर्ग। बघेलखंड की अपर छोटी–छोटी रियासतों के सद्वश रीवा राज्य भी शिल्प–कला और व्यवसाय में बहुत सी देशी रियासतों तथा प्रायः समस्त अंगेजी प्रदेशों की अपेक्षा बहुत पीछे रहा है। इस प्रांत के लोगों की आजीविका सरलतापूर्वक होती जाती है, इसी से अपर व्यवसायों में उन्नति करने की यहां के निवासियों को अभी तक आवश्यकता ही कम पड़ी है; और इसी से रीवा राज्य में कला–कौशल की उन्नति बहुत कम हो पाई है। यहां के कारीगर केवल उतनी ही चीजों का बनाना जानते थे, जो लोगों की मामूली जरूरत के लिये निहायत ही आवश्यक हैं।

मुख्य शब्द – बघेलखण्ड, दुर्ग, देशी रियासत एवं सांस्कृतिक विरासत।

प्रस्तावना –

इस राज्य में 1913 के पूर्व 187.5 मील पक्की सड़के और 329.5 कच्ची सड़के थी, इनके मरम्मत आदि का कार्य राज्य द्वारा करवाया जाता था। यों तो राज्य में प्रति वर्ष अनेक बड़े–बड़े काम बना करते है, किन्तु सब से बड़ा काम जो विगत 10 वर्षो के भीतर बना है, यह गोविन्दगढ़ का तालाब तथा रीवां का नवीन दरबार हाल है। तालाब की उस भूमि का क्षेत्र–फल, जितने में जल रहता है, प्रायः 1.3 वर्गमील है, तथा इसमें कुछ ऊपर 10 लाख रूपये भी व्यय हुए हैं; दरबार हाल के बनाने में कोई दो लाख रूपये व्यय हुए थे।

रीवा से जो सड़क गोविन्दगढ़ को गई है, वही कैमूर को पार करती आगे तक बढ़ाई जा रही है। जहाँ पर यह सड़क कैमूर को पार करती है, उस घाट को ऊँचाई आस–पास की भूमि की अपेक्षा कोई 800 फीट है। सड़क की ढाल इतनी कम कर दी गई है कि उस पर से होकर साधारण बैलगाड़ी और छकड़े आ जा सकते हैं। राज्य के दक्षिणी भाग में कुछ कच्ची सड़के भी बनवाई जा रही हैं।

राज्य के भिन्न–भिन्न भागों में अनेक नई–नई, कच्ची पक्की सड़के बन गई हैं।[1] बघेलखण्ड राज्य के भीतर निम्नलिखित पक्की और कच्ची सड़के तथा ढर्रे है – बड़ी दक्षिणी सड़क मिर्जापुर की ओर से आती है और हुजूर, मऊगंज तथा रघुराजनगर तहसीलों से होती हुई मैहर रियासत से जबलपुर की ओर निकल गई है। इसी सड़क पर हैं, जैसे, रीवां खास, अमरपाटन, रायपुर रघुनाथगंज, मनगवां, मऊगंज, खटखरी और हनुमना है। सतना से, जो राज्य भर में सबसे बड़ा व्यापारिक केन्द्र है, एक सतना–बेला रोड निकल कर बेला के पास इसमें मिल गया है; मनगवां से होकर सोहागी होती एक शाखा इसमें से इलाहाबाद की ओर भी चली गई है, यह

इलाहाबाद रोड के नाम से प्रसिद्ध है; सितलहा तहसील का माल इसी सड़क से इलाहाबाद की ओर भेजा जाता है।

अंग्रेजी सरकार के आ जाने से जो सिक्के ब्रिटिश भारत में प्रचलित थे वही विन्ध्य राज्य में भी। वि.सं. 1925 के पहले इस राज्य में प्रचलित सिक्कों का क्रम इस प्रकार मिलता है। रीवा के भण्डार में पुराने सिक्के सोने और चांदी के स्व. पं. जानकी प्रसाद ने बाहर से मंगवा कर रखवाया था, जिनकी जांच वमफोर्ड नाम के एक अंगरेज ने किया।

अंगेजी राज्य होने के पहले इस राज्य में सिक्कों के प्रचलन में स्वतंत्रता थी। इसके बाद इसमें कुछ अड़चने उपस्थित हुई। फिर भी यह क्रम महाराज विश्वनाथ सिंह तक चलता ही आया। वि.सं. 1910 में महाराज रघुराज सिंह अंगरेजी सरकार द्वारा अंगरेजी सिक्कों का प्रचार करने के लिए बाध्य किया गया। इस समय चांदी का प्रचलित सिक्का विक्टोरिया का रूपया था और तांबे के सिक्कों में ईस्ट इण्डियन ऐसे का प्रचार हुआ। बाद में इंग्लैण्ड के शासकों की आज्ञानुसार नए–नए सिक्के शासनानुकूल ढलते और प्रचलित होते गए। वर्तमान शासक से हर तीसरे शासक के पहिले का सिक्का बन्द होता गया। वि.सं. 1999 में पंचम जार्ज का चलतू चांदी का सिक्का भी बन्द कर दिया गया और नए जार्ज का सिलवर का रूपया जिसमें दो आने भर चांदी रहती है प्रचलित हुआ। इसी समय से चांदी के सिक्कों का प्रचार एक तरह से बन्द सा हो गया। निकिल के रूपए और कागज के नोट ही विशेष चलतू सिक्कों में गिने जाने लगे। निकल के अठन्नी, चौअन्नी और दुअन्नी, एकन्नी का भी प्रचार हुआ। वि.सं. 2002 से मोटे तांबे के पैसों की जगह पर मामूली छेददार पैसों का प्रचार हुआ।

महाराज गुलाब सिंह ने अपने राज्य के अंदर अपने स्वयं लेन देन के सम्बन्ध में वि.सं. 1974 में सोने और चांदी के सिक्कों को ढलवाया, जिसमें एक और राजकीय चिन्ह 'मृगेन्द्र प्रतिद्वन्द्वात्तमा प्रपत' खुदा हुआ था और दूसरी और 'महाराज गुलाब सिंह जूदेव वि.सं. 1974' खुदा था। बान्धवीय इतिहास में ऐसे दो ही महाराज हुए हैं, जिन्होंने अपने सिक्कों का प्रचार किया। एक तो है महाराज विश्वनाथ सिंह जिन्होने तांबे का वग्घाशाही पैसा प्रचलित किया और दूसरे हैं महाराज गुलाब सिंह जिन्होंने सोने और चांदी के सिक्कों का प्रचलन अपने निजी लेन देन में किया।[2]

चांदी के सिक्के इस राज्य में कभी बनवाये या सिक्का ढलवाये नहीं गये थे; सन् 1868 ई. के लगभग महाराजा विश्वनाथ सिंह जी के समय में एक तांबे का सिक्का, जिसको बघ्घाशाही कहते हैं, अलबत्ता बनवाकर इस राज्य में प्रचलित किया गया था। कंपनी के एक कल्दार रूपये के 56 बघ्घाशाही पैसे मिलते थे। इस पैसे का प्रचार इस राज्य में महाराजा रघुराज सिंह जी के समय तक रहा आया था; परंतु 1868 से इस राज्य में अंगेजी ही सिक्के चलनसार सिक्के माने जाते हैं।

विश्लेषण –

कालिंजर और बान्धवगढ़ दोनों गिरि दुर्गों को बड़े दुर्गो की श्रेणी में रखा जा सकता है। ये दोनों दुर्ग आकार और दुर्गीकरण के रक्षात्मक अवधानों मे बघेलखण्ड के अन्य दुर्गों की अपेक्षा विशाल और दुर्भेद्य थे। दूसरे मध्यम श्रेणी के अन्तर्गत रीवा दुर्ग को रखा जा सकता है और तीसरे लघु दुर्गों की श्रेणी में रेवहुँटा, क्योंटि, अमरपाटन, मैहर, सोहावल, कोठी, सोहागपुर, संकरगढ, एवं वर्दी को रखा जा सकता है। इन लघु दुर्गों को भी इनके आकार, स्थिति एवं संरचना के अनुसार चार श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है[3] –

1. रेवहुँटा, सोहावल और वर्दी के दुर्ग,
2. रेवहुँटा, अमरपाटन और सोहागपुर के दुर्ग,
3. मैहर और कोठी के दुर्ग,
4. शंकरगढ़ का लघु दुर्ग।

लघु दुर्ग –

बघेलखण्ड अंचल में उक्त बड़े और मध्यम दुर्गों के पश्चात् लघु दुर्गों (गढ़ों) की अधिकता पायी गयी है। इन लघु दुर्गों को उनके आकार और दुर्गीकृत संरचना के आधार पर चार भागों में बाँटा जा सकता है। प्रथम श्रेणी में क्योंटि, सोहावल और वर्दी स्थित दुर्ग इस आधार पर आते हैं कि ये तीनों ही दुर्ग नदियों के तट पर स्थित हैं। क्योंटी दुर्ग महानदी के तट पर, सोहावल दुर्ग सतना नदी के तट पर और वर्दी दुर्ग सोन एवं गोपद

नदियों के संगम तट पर स्थित है। इन तीनों दुर्गों की अकृत्रिम दुर्ग प्रक्रिया के रूप में नदियाँ प्रवाहित होती हैं, जबकि कृत्रिम दुर्ग, प्रक्रिया के रूप में निर्माताओं ने अन्य अंग–उपांगों का निवेशीकरण किया है। उक्त तीनों दुर्गों को शुक्रनीति के अनुसार नदी दुर्ग, अस्मा दुर्ग, एष्टिका दुर्ग, स्कन्धावार और सहाय दुर्ग कहा जा सकता है। दूसरे श्रेणी में रेवहुँटा, अमरपाटन और सोहागपुर स्थित दुर्गों को इस आधार पर रखा जा सकता है कि ये तीनों ही दुर्ग समतल भू–क्षेत्रों में स्थित हैं।[4]

मध्यम दुर्ग –

बघेलखण्ड अंचल से बान्धवगढ़ और कालिंजर गिरि दुर्गों के बाद रीवा ही एक ऐसा दुर्ग है, जो आकार और दुर्गीकरण में अन्य लघु दुर्गों से बड़ा है, इसलिए इसे मध्यम श्रेणी के दुर्ग के अन्तर्गत रखा जा सकता है। रीवा दुर्ग में भी अकृत्रिम तथा कृत्रिम दुर्ग प्रक्रिया देखने को मिलती है। अकृत्रिम दृष्टि से प्रकृति ने अपने उपादान के रूप में दो गहरी नदियाँ प्रदत्त किया है, जिनके संगम तट पर दुर्ग स्थित है। इन दोनों नदियों के द्वारा दो तरफ से प्राकृतिक परिखा का कार्य होता रहा है। जबकि कृत्रिम दुर्ग प्रक्रिया की दृष्टि से दुर्ग निर्माताओं ने दुर्ग के विविध अंगों का निवेश किया है। रीवा दुर्ग को 'नृ–दुर्ग अथवा नर–दुर्ग' या 'मानव दुर्ग' माना जा सकता है। शिल्पशास्त्रों में आबादी से परिपूर्ण और चतुरंगिणी सेना से युक्त दुर्ग को नृ–दुर्ग अथवा नर–दुर्ग कहा गया है। इस दृष्टि से रीवा दुर्ग अपने वैभवकाल में क दुर्गीकृत नगर के रूप में आबादी से परिपूर्ण और चतुरंगिणी सेनाओं से युक्त था। अपने चरमोत्कर्ष काल में चतुर्दिक योद्धाओं से सुरक्षित होने के कारण इसे 'बाल दुर्ग' भी कहा जा सकता है।[5]

विशाल (बड़े) दुर्ग –

बघेलखण्ड अंचल के कालिंजर और बान्धवगढ़ दुर्गों को बड़े दुर्गों की श्रेणी में रखा जा सकता है। ये दोनों ही दुर्ग गिरि दुर्ग हैं। दोनों दुर्ग दो दिशाओं में दो अलग–अलग पर्वतमालाओं पर विस्तृत क्षेत्र में फैले हुए हैं। इनके निर्माण में मानव का हाथ न के बराबर है। दोनों के स्वरूप के अनुसार इन दुर्गों के अकृत्रिम तथा कृत्रिम दोनों प्रकार की दुर्ग प्रक्रिया देखने को मिलती है। अकृत्रिम दृष्टि से प्रकृति ने स्वयं अपने उपादान के रूप में विस्तृत और गहन गिरि श्रृंग प्रदान किया है। दोनों दुर्गों में कृत्रिम परिखा खनन का कार्य नहीं किया गया है। बान्धवगढ़ में कृत्रिम परिखा का कार्य वहाँ के विस्तृत दलदलों, खोहों और कन्दराओं ने किया है। दुर्ग की नैसर्गिक संरचना के कारण कर्णद्वार के पास के अतिरिक्त प्राचीर का भी निर्माण नहीं किया गया है। कालिंजर गिरि दुर्ग में प्राचीर का निर्माण तो कृत्रिम रूप से किया गया है, लेकिन परिखा का कार्य वहाँ भी पर्वत कन्दराओं और विशिष्ट भू–स्थिति के द्वारा हुआ है।[6]

बघेलखण्ड स्थित बड़े दुर्गों की श्रृंखला में निर्मित पहला दुर्ग बान्धवगढ़ दुर्ग है जो चारों ओर से विशाल घने जंगलों तथा सीधी खड़ी नैसर्गिक चट्टानों से आच्छादित एक गिरि दुर्ग है। इस तरह की सुरक्षात्मक स्थिति बघेलखण्ड के अन्य दुर्गों में देखने को नहीं मिलती। इस दुर्ग में कुछ स्थापत्यों को छोड़कर सर्वत्र खण्डहर ही हैं, जिन्हें संभवतः मुगलों ने ध्वस्त कर दिया है, जिनके क्रूर थपेड़ो के चिन्ह बान्धव पर्वत पर बिखरे पड़े हैं और कुछ कृतियाँ काल के क्रूर हाथों से विनष्ट होकर मिट्टी में मिल गयी हैं। इस दुर्ग में राजवास्तु, जनवास्तु और देववास्तु तीनों का निवेश किया गया था। धार्मिक वास्तु के अन्तर्गत मूर्ति स्थापत्य कल्चरि कला की देन है। यह दुर्ग 9वीं से 12वीं शताब्दी तक कल्चुरियों से सम्बद्ध रहा और कल्चुरियों से बघेलों को प्राप्त हुआ। इस दुर्ग को तीन बार लोदी आक्रमणों और दो बार मुगल आक्रमणों का शिकार होना पड़ा यहाँ तक कि चन्देलों और कुरूओं जैसी कुछ स्थानीय शक्तियाँ भी दुर्ग पर अधिकार करने के लिए प्रयत्नशील रहीं लेकिन वे सभी दुर्ग की अगम्यता के शिकार हुए केवल अकबर के काल में 1597 ई. से 1602 ई. तक यह दुर्ग मुगलों के सीधे नियन्त्रण में रहा।[7]

कालिंजर दुर्ग समूचे भारतवर्ष में विख्यात एक अजेय दुर्ग था। इसका सम्पूर्ण दुर्गारोहण अत्यन्त अगम्य और विशाल परकोटे (प्राचीर) से आच्छादित है। समस्त धार्मिक स्थापत्यों के मध्य नीलकंठ मन्दिर वास्तु की दृष्टि से अत्यन्त उत्तम है, इसके अतिरिक्त मूर्ति स्थापत्य बिखरा पड़ा है। मूर्ति स्थापत्य की दृष्टि से यह सभी दुर्गों से समृद्ध है। यह दुर्ग समय–समय पर कल्चुरियों, चन्देलों, भरों, बघेलों और अन्त में बुन्देलों से सम्बद्ध रहा। इसकी सामरिक महत्ता और प्रसिद्धि के कारण महमूद गजनवी ने दो बार असफल अभियान किया और

उसे बिना किसी उपलब्धि के लौटना पड़ा। इसी क्रम में ऐबक, अल्तमस, हुमायू, शेरशाह और अकबर इत्यादि ने इसे समय–समय पर हस्तगत किया। शेरशाह को तो इस दुर्ग को फतेह करते–करते जान से हाथ धोना पड़ा।

रीवा दुर्ग इस क्षेत्र का तीसरा मध्यम श्रेणी का दुर्ग था जो बान्धवगढ़ के बाद 1617 ई. में बघेल शासकों की राजधानी के रूप में सुशोभित हुआ। रीवा दुर्ग के लिए यह स्थल प्रकृति के वरदानस्वरूप दुर्ग निर्माताओं को प्राप्त हुआ था। यह तीन ओर से नदियों से घिरा हुआ समतल भू–पृष्ठ के ऊँचे भाग पर स्थित है। रीवा दुर्ग में भी राजवास्तु, नागरिक वास्तु और देववास्तु का विनिवेश किया गया था। बघेलखण्ड के सभी दुर्गों में इस दुर्ग का राजवेश्म सबसे ज्यादा अलंकृत है लेकिन उनमें से अधिकांश राजवास्तु 17वीं शताब्दी के बाद का है। नागरिक वास्तु अवशेषों के कुछ खण्डहरों को छोड़कर सभी मिट्टी में मिल गए हैं। धार्मिक वास्तु मन्दिर वास्तु के अतिरिक्त कल्चुरि काल की मूर्तियों का भी दुर्ग में संग्रह किया गया है। यह दुर्ग भी उक्त काल खण्ड में अपनी सामरिक महत्ता के कारण एक बुन्देला आक्रमण का शिकार हुआ।

लघु दुर्गों की श्रृंखला में रेवहुँटा दुर्ग त्रिपुरी के कल्चुरियों से सम्बद्ध रहा है। कल्चुरि कर्ण ने दुर्गीकृत नगर के मध्य में अपना राजप्रासाद बनवाया था। दुर्गीकरण के अन्दर और बाहर समस्त वास्तु अवशेष इस तरह बिखरे पड़े हैं, मानों किसी आक्रमण आदि से इन्हें विध्वंश किया गया हो।

दूसरे क्रम में क्योंटी का दुर्ग है, जो महानदी तट पर निर्मित है। समस्त सुरक्षात्मक अवधानों से युक्त क्योंटी दुर्ग अपने भग्नावशेषों के मध्य सुरक्षित वर्तमान में पुरातत्व विभाग के संरक्षण में है। तीसरे क्रम में अमरपाटन दुर्ग में भी धार्मिक वास्तु के अतिरिक्त लगभग सभी अंग निर्मित किए गये हैं। इसका पूर्वी भाग खण्डहर हो चुका है। चौथे क्रम में मैहर दुर्ग के बघेलकालीन भाग को बुन्देलों ने ध्वस्त कर दिया था, अतः उन्हीं ध्वंसावशेषों के मध्य दुर्गीकरण का सम्पूर्ण निवेश दृष्टिगोचर होता है, इसलिए वास्तविक परिज्ञान नहीं हो पाता। पांचवे क्रम में सोहावल दुर्ग लघु दुर्गों में सबसे विशिष्ट दुर्ग था। समस्त सुरक्षा प्रकारों से युक्त यह दुर्ग सतना नदी के तट पर अवस्थित है। इस दुर्ग में राजवास्तु का सुन्दर निदर्शन प्राप्त होता है। छठे क्रम में कोठी का लघु दुर्ग है जो अपने वास्तु अवशेषों के मध्य सामान्य श्रेणी का दुर्ग है। सातवें क्रम में सोहागपुर दुर्ग आता है जो बान्धवगढ़ के नजदीक स्थित होने के कारण महत्वपूर्ण था। इस दुर्ग की दीवारों में दैव आकृतियों के आलेखन और सज्जापट्टी के समक्ष सुरक्षात्मक निवेश गौड़ हो गया है।[8]

आठवे क्रम में शंकरगढ़ पर्वत पृष्ठ पर स्थित लघु गिरि दुर्ग है जो प्रकृति प्रदत्त संरचना के कारण दुर्भेद्य था। यह संभवतः प्रारम्भ में कल्चुरियों और बाद में परिहारों से सम्बद्ध रहा। नौवां और अन्तिम लघु दुर्ग वर्दी है जो गोपद और सोन नदियों के संगम तट पर स्थित सुरक्षात्मक निवेश से युक्त था। चन्देलों से सम्बद्ध यह दुर्ग वर्तमान में वीरान और खण्डहर है।

महाराज बेंकटरमण सिंह के समय में इन्जीनियरी का अच्छा सुधार हुआ। इन्होने दक्ष इन्जीनियरों की सहायता से बीस लाख रूपए की लागत का 'बेंकट भवन' नामक बेजोड़ इमारत का निर्माण कराया। वि.सं. 1954 में श्रीपति घोष एक बंगाली इंजीनियर (स्टेट इंजीनियर) के पद पर रखे गए। इन्होंने रीवा–सिरमौर रोड और रीवा–गुढ़ सड़कों का निर्माण कराया। इस समय तक बैलों या भैंसों को जोत कर पत्थर के वजनी बेलन सड़कों पर चलाए जाते थे। गोविन्दगढ़–रीवा, बेला–गोविन्दगढ़ और पाली–डिण्डौरी सड़के बनवाई गई।

वि.सं. 1955 में सबसे पहले सड़क निर्माण हेतु मोटर रीवा में मंगाई गई। इसी साल निम्नलिखित सड़कें भी बनाई गईं[9] –

1. गोविन्दगढ़–रामनगर रोड
2. रीवा–गुढ़ सड़क
3. रीवा–बैकुण्ठंपुर–सिरमौर रोड
4. सतना–सेमरिया सड़क
5. सतना–अमरपाटन सड़क

वि.सं. 1947 में कैमोर पर्वत के छुहियां घाट को पारकर गोविन्दगढ़ से सीधी को और शिकारगंज से नौढ़िया को सड़के निकाली गई। इनमें लगभग एक लाख रूपए खर्च हुआ। वि.सं. 1980 में ब्यौहारी–देवसर की भी सड़कें बनीं।

वि.सं. 1984 में चाकघट का पुल और राज्य के अन्दर अनेक इमारतों का निर्माण कराया। साथ ही इन्जीनियरी विभाग का भी नए ढंग से सुधार किया। शिकार के लिए कुछ जंगली सड़कें भी बनवाई गईं। गुढ़

से गड्डी पहाड़ पारकर एक कच्चा ढर्रा चोरहट तक बनवाया गया। देवसर के आगे बैढ़न–सिंगरौली की भी सड़क बनाई गई।

वि.सं. 1988 शहडोल से बसनिहा और अमरकण्टक के लिए सड़क का निर्माण होना शुरू हुआ। महाराज गुलाब सिंह ने अपने शासन काल में सड़कों के निर्माण में विशेष ध्यान दिया और राज्य की अनेक सुन्दर सडकों का सुधार हुआ।

वि.सं. 1994–1997 में 1,64,000 रू. में एक बड़ा भारी 1652 एकड़ का लिलजी बांध बंधाया गया तथा अनेक इमारतों और पुलों का निर्माण हुआ। श्री उज्जैनिन मेमोरियल हाल, रायल मेंशन आदि इमारतें इसी समय में बनी।

निष्कर्ष –

निष्कर्षतः बघेलखण्ड की सांस्कृतिक विरासतों की वर्तमान स्थिति चिंतनीय हैं, संरक्षण की आवश्यकता है। सांस्कृतिक विकास के प्रलेखीकरण करने से बघेल शासकों की जहाँ एक ओर भूमिका स्पष्ट होगी, वहीं कालक्रमानुसार विरासतों के विकास तथा बघेल शासकों द्वारा किए गये नवाचारों के विषय में भी जानकारी प्राप्त होती है। सांस्कृतिक विरासतों की वर्तमान स्थिति उसके संरक्षण का मार्ग प्रशस्त करती है। बघेल शासकों ने सांस्कृतिक क्षेत्र में अनेक लोकहितकारी एवं निर्माण कार्य किए। उनके द्वारा निर्मित भवन, जल संरचनाएं, कला एवं संस्कृति में बहुत अधिक योगदान रहा है। पर्यावरण एवं जीव–जन्तुओं के प्रति भी रीवा साम्राज्य के महाराजाओं का बहुत अधिक योगदान रहा है। महाराजा मार्तण्ड सिंह जू देव ने समस्त विश्व को सफेद बाघ से ना केवल परिचित कराया बल्कि बाघों के संरक्षण के लिए भी भागीरथ प्रयास किए।

संदर्भ –

[1] डॉ. एन.पी. पाण्डेय – मध्यप्रदेश रीवा राज्य दर्पण (भारतीय गजेटियर), वर्ष 1998, पृष्ठ 273
[2] पत्रिका सहस्त्राब्दी के आर–पार, कादम्बिनी क्लब, सतना, वर्ष 2007, पृष्ठ 31
[3] डॉ. महेन्द्रमणि द्विवेदी – बघेलखण्ड में दुर्ग निर्माण कला, शेखर प्रकाशन, इलाहाबाद, वर्ष 2006, पृष्ठ 104
[4] डॉ. महेन्द्रमणि द्विवेदी – बघेलखण्ड में दुर्ग निर्माण कला, शेखर प्रकाशन, इलाहाबाद, वर्ष 2006, पृष्ठ 106
[5] डॉ. महेन्द्रमणि द्विवेदी – बघेलखण्ड में दुर्ग निर्माण कला, शेखर प्रकाशन, इलाहाबाद, वर्ष 2006, पृष्ठ 106
[6] डॉ. महेन्द्रमणि द्विवेदी – बघेलखण्ड में दुर्ग निर्माण कला, शेखर प्रकाशन, इलाहाबाद, वर्ष 2006, पृष्ठ 105
[7] डॉ. महेन्द्रमणि द्विवेदी – बघेलखण्ड में दुर्ग निर्माण कला, शेखर प्रकाशन, इलाहाबाद, वर्ष 2006, पृष्ठ 213
[8] डॉ. महेन्द्रमणि द्विवेदी – बघेलखण्ड में दुर्ग निर्माण कला, शेखर प्रकाशन, इलाहाबाद, वर्ष 2006, पृष्ठ 214
[9] पत्रिका सहस्त्राब्दी के आर–पार, कादम्बिनी क्लब, सतना, वर्ष 2007, पृष्ठ 32